राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-सुधा

H
811.009
M 687 R

H
811.009
M687R

डॉ॰ शिवकुमार मिश्र

राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-सुधा

सम्पादक
डॉ० शिवकुमार मिश्र
वरिष्ठ प्राध्यापक
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
वाराणसी

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

RASTRIYA-SAMSKRITIK KAVYA-SUDHA

Edited by

Dr. Shiv Kumar Mishra

ISBN : 81-7124-349-5

Library IIAS, Shimla
H 811.009 M 687 R
00120468

प्रथम संस्करण : 2003 ई०

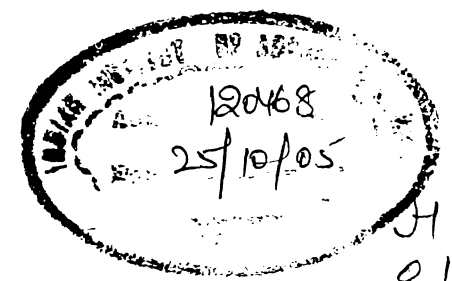

H
811.009
M 687 R

प्रकाशक

विश्वविद्यालय प्रकाशन

चौक, वाराणसी-221 001

फोन व फैक्स : (0542) 2353741, 2353082

E-mail : vvp@vsnl.com • E-mail : sales@vvpbooks.com

Website : www.vvpbooks.com

मुद्रक

वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०

चौक, वाराणसी-221 001

अनुक्रम

पृष्ठ

आमुख v-ix

1. मैथिलीशरण गुप्त 1-9

हमारे पूर्वज 1

आदर्श 2

जयद्रथ-वध 5

पञ्चवटी 7

उद्‌बोधन 8

2. जयशङ्कर प्रसाद 10-12

अरुण यह मधुमय देश हमारा 10

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से 10

हमारा प्यारा भारतवर्ष 11

3. माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' 13-18

मरण-त्योहार 13

युग-पुरुष 14

अमर निशानी 16

चरण चले, ईमान अचल हो 17

पुष्प की अभिलाषा 18

4. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' 19-27

यह है विप्लव का पथ, भाई 19

ओ तुम मेरे प्यारे जवान! 20

सैनिक, बोल! 22

दग्ध हो रहे हैं मेरे जन 24

जूठे पत्ते 26

5. सुभद्राकुमारी चौहान 28-33

झाँसी की रानी 28

जलियाँवाले बाग में वसन्त 29

स्वागत-गीत 30

स्वदेश के प्रति 31

वीरों का कैसा हो वसन्त 32

6. रामधारी सिंह 'दिनकर' 34-40

प्रभाती 34

एक बार फिर स्वर दो 35

कर्ण 36

हिमालय 38

शान्ति 39

परिशिष्ट 41-46

कवि-परिचय 41

●

आमुख

हिन्दी साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिए अपनी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का ज्ञान आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। इसके अभाव में वह अपनी राष्ट्रीय गरिमा और उसके स्वतन्त्रता प्रेम का अनुभव नहीं कर सकता। प्राय: विश्वविद्यालयों में हिन्दी साहित्य और भाषा का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी के लिए जो संकलन तैयार होते रहे उनमें विभिन्न प्रकार की कविताओं का समावेश तो होता रहा है किन्तु राष्ट्रीय और सांस्कृतिक स्वर का पुँजीभूत स्वर आद्यन्त सुनाई नहीं पड़ता। इसी अभाव की पूर्ति के लिए 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-सुधा' संकलन प्रस्तुत किया गया है।

स्वाभाविक है कि जिस राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना को ध्यान में रखकर प्रस्तुत संकलन तैयार हुआ है उसका विश्लेषण एवं विवेचन यहाँ समीचीन होगा। यों तो भारत जैसे अनेक भाषाओं और संस्कृतियों के देश में एकता की एक अन्त:सलिला निरन्तर प्रवहमान रही है, किन्तु कहना गलत न होगा कि उसमें मानवीय भावनात्मकता का जितना योगदान था उतना राष्ट्रीय अस्मिता का नहीं। बताना आवश्यक नहीं कि राष्ट्रीयता के साथ जुड़ी आधुनिक चेतना का विकास तभी सम्भव हुआ जब हमने अपनी परवशता को गहराई से महसूस किया और स्वतन्त्रता का अभाव हमें उद्वेलित करने लगा। हम 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के विश्वासी रहे हैं तथा हमने सांस्कृतिक आदान-प्रदान में भी कभी कमी नहीं आने दी, लेकिन दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि हमारी इस उदारता को कमजोरी मानकर हमें हीनता की ओर अग्रसर करने का प्रयास लम्बे अरसे तक चलता रहा।

मुगलकाल तक हम पर चाहे जो भी अत्याचार हुए हों किन्तु आर्थिक रूप से हमें विपन्न बनाकर कमजोर करने का प्रयास उस काल में नहीं हुआ। ऐतिहासिक तथ्य है कि मुगल यहाँ आये तो हमारे अपने होकर रह गये। उन्होंने हमारी सांस्कृतिक विरासत में कुछ जोड़ा ही, उसे नष्ट करने का प्रयत्न प्राय: नहीं किया। लेकिन ब्रिटिश शासन के दौरान हमारी संस्कृति को अन्धविश्वासी कहकर हम पर पश्चिमी संस्कृति को आरोपित करने का प्रयास किया गया। हमारे धन को विभिन्न औद्योगिक प्रयासों के द्वारा विदेश भेजा गया। हमारी सारी उत्पादन क्षमता को विनष्ट कर दिया गया। हम मात्र आयातक बनकर रह गये। ऐसे प्रयासों के पीछे किसी जाति या राष्ट्र की कमजोरियों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। हमारी इन्हीं कमजोरियों का लाभ ब्रिटिश सत्ता ने उठाया। कुछ लोगों

को अंग्रेजी पढ़ा-लिखाकर उन्होंने अपना समर्थक बनाया और साधारण जनता को उसे 'रहमोकरम' पर छोड़ दिया गया। यही वह पृष्ठभूमि है जिसमें राष्ट्रीयता का आधुनिक स्वरूप भारतीय मानस पटल पर रूपायित होता है।

कवि समाज का सर्वाधिक संवेदनशील और सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न प्राणी होता है। उसकी आँखों से समाज और संस्कृति का कोई भी पक्ष ओझल नहीं रहता। अंग्रेजी शिक्षा ने हमें चाहे जितनी क्षति पहुँचाई हो, हमें कुछ बहुमूल्य अवदान भी उसी से प्राप्त हुआ। पश्चिम का राष्ट्रीयता प्रेम आधुनिक युग का महत्त्वपूर्ण पक्ष कहा जायेगा, जिसने हमें भी राष्ट्रीयता की ओर देखने को प्रेरित किया। हमने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीय अस्मिता को गहराई से समझा और उसके कारणों को भी उजागर किया। कहना न होगा कि हमारे समक्ष राष्ट्रीयता के इस भाव को प्रस्तुत करने में कवियों का ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके समकालीन कवियों और लेखकों ने 'नवजागरण' का जो शंख फूँका उसका प्रभाव जीवन के हर क्षेत्र पर पड़ा। इस काल में केवल काव्य ही नहीं नाटक, निबन्ध, प्रहसन, भाषण आदि विभिन्न रूपों में परतन्त्रता के दंश को गहराई से महसूस किया गया और उनकी अभिव्यक्ति की गई। किन्तु इस युग की विशेषता यह थी कि यहाँ एक ओर तो नवीनता के प्रति गहरा आकर्षण था तो दूसरी ओर परम्परा प्रेम भी विद्यमान था। यही कारण है कि इस युग के काव्य में जहाँ एक ओर आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं तो वहीं दूसरी ओर भारत दुर्दशा के चित्र भी प्रस्तुत हुए हैं। इस युग की एक और विडम्बना थी कि जहाँ एक ओर गद्य की भाषा खड़ी बोली थी वहीं दूसरी ओर काव्यभाषा के रूप में ब्रज का प्राधान्य अवशिष्ट था। इसलिए इस युग की खड़ी बोली की रचनाएँ काव्यात्मक दृष्टि से लचर एवं अभिधेयार्थक तक ही सीमित है। किन्तु वैज्ञानिक चेतना का बोध इस युग के कवि को पूरी तरह था। इस युग की गद्य रचनाएँ इसका ज्वलन्त प्रमाण हैं।

दरअसल जिस अस्मिता बोध की चर्चा पीछे की जा चुकी है, उसका प्रसार जिस तरह बीसवीं शताब्दी में हुआ वैसा पूर्ववर्ती काल में सम्भव न था। इस युग तक आते-आते विभिन्न धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनों का प्रभाव पूरे समाज पर व्याप्त था और स्वतन्त्रता प्रेम एक बड़ी उपलब्धि के रूप में हमारे समाज के सामने आ चुका था और इसी परिप्रेक्ष्य में कवि अपनी सांस्कृतिक विरासत को पुनर्मूल्यांकित करने के लिए विवश हुआ। अपने अतीत को भूलना ही उसकी परतन्त्रता का एक प्रमुख कारण था, इसका अहसास भी उसे हुआ। कहा जाता है जो अपना अतीत नहीं जानता वह सब कुछ जानकर भी कुछ नहीं

जानता। क्योंकि उसे अपनी उस जमीन का ही पता नहीं होता जिस पर वह खड़ा होता है। तात्पर्य यह कि अतीत को जानकर ही हम अपने वर्तमान को भली प्रकार दिशा निर्देश दे सकते हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी के नेतृत्व में हिन्दी साहित्य में 'नवजागरण' के लिए जिस पुनरुत्थान पर बल दिया गया, उसके मूल में अपनी लम्बी सांस्कृतिक परम्परा को जानने और पहचानने की प्रेरणा निहित है। द्विवेदीजी के पुनरुत्थानवाद को लेकर नाक भौं सिकोड़ने वाले यह भूल जाते हैं कि वे इस युग की अपरिहार्य आवश्यकता थे। उन्होंने गद्य और पद्य की भाषा को एक कर दिया। आज जिस राष्ट्रभाषा का स्वरूप हमारे समक्ष विद्यमान है उसको यहाँ तक लाने में महावीरप्रसाद द्विवेदी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। वह युग सुधार और पुनरुत्थान का युग था और उसमें कतिपय नवीन प्रवृत्तियों— नैतिकता, उपदेशात्मकता, वर्णनात्मकता और सांस्कृतिक चेतना आदि का आगमन स्वाभाविक ही था। विलासिता के पंक में डूबे हुए सामन्तवाद को जिस तरह पूँजीवादी शक्तियों ने पराधीन होने के लिए विवश कर दिया था, उससे मुक्ति के लिए नैतिकता और उपदेश का संचार जरूरी थी और यह तभी सम्भव था, जब अपनी सांस्कृतिक शक्ति को दिग्दर्शित करके लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाय। 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप में द्विवेदीजी ने यही स्तुत्य प्रयास किया। मैथिलीशरण गुप्त को द्विवेदीजी की देन कहना गलत न होगा जिसे स्वयं गुप्तजी ने साभार स्वीकार किया है। गुप्तजी ने हमारी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय परम्परा को जिस तरह अपनी कविता के माध्यम से आगे बढ़ाया, वह अपने आप में एक अद्वितीय उदाहरण है।

अकारण नहीं है कि मैथिलीशरण गुप्त राष्ट्रकवि कहे जाते हैं। इन्होंने अतीत के वे पृष्ठ हमारे सामने प्रस्तुत किये जिनके माध्यम से हम अतीत के उन विशिष्ट चरित्रों से परिचित होते हैं जो हमारी सुदीर्घ सांस्कृतिक परम्परा के प्रकाश स्तम्भ है और जो समकालीन स्वतन्त्रता आन्दोलन में प्रेरणा देने का कार्य करने में भी सक्षम है। राष्ट्रीय उत्थान में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। गुप्तजी की नारियाँ अपने अनुपम त्याग-बलिदान और नैतिकता-प्रेम के कारण तथाकथित आधुनिकताओं के लिए भले ही पिछड़ी कही जायँ, किन्तु भारतीय नारी को अनुपम और गौरव प्रदान करने में उनकी ऐतिहासिक भूमिका रही है। द्विवेदीजी की प्रेरणा से ही इस युग में हरिऔध, रामचरित उपाध्याय, लोचनप्रसाद पाण्डेय, नाथूराम शर्मा, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रामनरेश त्रिपाठी, श्रीधर पाठक, सियारामशरण गुप्त, रूपनारायण पाण्डेय जैसे कवियों का हिन्दी जगत में आगमन हुआ जिनके काव्य में राष्ट्रीयता और संस्कृति के विभिन्न आयाम

उद्घाटित हुए हैं। इस युग पर दयानन्द सरस्वती और गाँधीजी का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, जिनके नेतृत्व में सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता का आन्दोलन अपने-अपने ढंग से अग्रसर हो रहा था। इस युग में विधवा विवाह, नारी विकास दलितों के प्रति सहानुभूति आदि की ओर भी सम्यक् ध्यान दिया गया जिसका रूपायन इस युग के काव्य में देखा जा सकता है।

आगे चलकर छायावादी काल में कल्पना और कवित्व की लाक्षणिकता पर विशेष बल देते हुए व्यक्ति के अस्तित्व को समाज के समक्ष रखने का एक अभिनव प्रयास किया गया, लेकिन राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना की अनुगूँज इस काव्य में भी स्पष्ट सुनाई देती है। हमारी आध्यात्मिकता को नई मानवतावादी दृष्टि से देखने का प्रयास छायावादी काव्य में किया गया है और अतीत प्रेम तो इस युग का महत्त्वपूर्ण पक्ष है, जिसके फलस्वरूप 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'वर दे वीणा वादिनी वर दे' जैसी उत्कृष्ट कविताएँ सामने आयीं। लेकिन राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना को मुखर रूप से प्रस्तुत करने में सुभद्राकुमारी चौहान, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और दिनकर का जितना महत्त्वपूर्ण योगदान है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। छायावाद के रहस्यवादी रुझान और सौन्दर्यबोध के नवीन उन्मेष के साथ 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताएँ प्राय: परिशिष्ट में चली गयी थीं, उन्हें नया उन्मेष देने में राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के साथ जुड़े इन मुखर कवियों ने आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसलिए प्रस्तुत संकलन में इन्हीं कवियों के स्वर को रेखांकित करते हुए 'राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य-सुधा' को प्रस्तुत किया गया है, ताकि बी०ए० प्रथम वर्ष के सामान्य हिन्दी के विद्यार्थी को अपनी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक गरिमा से भली-भाँति परिचित कराया जा सके।

यहीं राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद के अन्तर को उल्लेखित करना भी आवश्यक हो जाता है ताकि विद्यार्थी के कच्चे मन पर उसका अशुभ प्रभाव न पड़े। राष्ट्रीयता के अन्तर्गत किसी राष्ट्र के समूचे सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक और लौकिक पक्ष के साथ उसकी प्राकृतिक सम्पदा का भी समावेश होता है। एक राष्ट्र में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका इस राष्ट्रीयता को विकसित करने और उसे सुरक्षित रखने के लिए उत्तरदायी होती है। किन्तु अन्य राष्ट्रों के प्रति सौहार्द और परस्पर आदान-प्रदान भी इसमें शामिल होता है। किन्तु राष्ट्रवाद अपने राष्ट्र के प्रति समर्पण के जिस भाव से उत्प्रेरित करता है, उससे राष्ट्रवादी तानाशाही का खतरा निरन्तर विद्यमान रहता है। हिटलर और मुसोलिनी के रूप में इसका उदाहरण देखा जा चुका है। कहना न होगा कि भारतीय

मानवतावाद अपने आदि से ही सबके प्रति प्रेम और सहानुभूति का परिचायक रहा है और राष्ट्रीय उन्मेष के बीसवीं शताब्दी में भी उसमें किसी प्रकार की कोई कमी नहीं आयी है, यही हमारी राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का शुभ लक्षण है जिसे संकलित कविताओं में भी देखा जा सकता है। इस संकलन का उद्देश्य भी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक सुधा का वर्षण है जिससे विद्यार्थियों को नई चेतना मिले और वे विशाल देश की सांस्कृतिक सम्पदा को एकीकृत करने में सफल हों।

●

मैथिलीशरण गुप्त
[1886–1964 ई०]

हमारे पूर्वज

उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है,
गाते नहीं उनके हमीं गुण गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण-समान शरीर थे,
उनसे वही गम्भीर थे, वरवीर थे, ध्रुव धीर थे॥

उनके अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था,
अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था।
उपदेश उनके शान्तिकारक थे निवारक शोक के,
सब लोक उनका भक्त था, वे थे हितैषी लोक के॥

लखते न अघ की ओर थे वे, अघ न लखता था उन्हें,
वे धर्म्म को रखते सदा थे, धर्म्म रखता था उन्हें!
वे कर्म्म से ही कर्म्म का थे नाश करना जानते,
करते वही थे वे जिसे कर्त्तव्य थे वे मानते॥

वे सजग रहते थे सदा दुख-पूर्ण तृष्णा-भ्रान्ति से।
जीवन बिताते थे सदा सन्तोष-पूर्वक शान्ति से।
इस लोक में उस लोक से वे अल्प सुख पाते न थे,
हँसते हुए आते न थे, रोते हुए जाते न थे।

जिनकी अपूर्व सुगन्धि से इन्द्रिय-मधुपगण थे हिले,
सद्भाव सरसिज वर जहाँ पर नित्य रहते थे खिले।
लहरें उठाने में जहाँ व्यवहार-मारुत लग्न था,
उन्मत्त आत्मा-हंस उनके मानसों में मग्न था॥

वे ईश-नियमों की कभी अवहेलना करते न थे,
सन्मार्ग में चलते हुए वे विघ्न से डरते न थे।

अपने लिए वे दूसरों का हित कभी हरते न थे,
चिन्ता-प्रपूर्ण अशान्तिपूर्वक वे कभी मरते न थे॥

वे मोह-बन्धन-मुक्त थे, स्वच्छन्द थे, स्वाधीन थे;
सम्पूर्ण सुख-संयुक्त थे, वे शान्ति-शिखरासीन थे।
मन से, वचन से, कर्म्म से वे प्रभु-भजन में लीन थे,
विख्यात ब्रह्मानन्द-नद के वे मनोहर मीन थे॥

उनके चतुर्दिक-कीर्ति-पट को है असम्भव नापना,
की दूर देशों में उन्होंने उपनिवेश-स्थापना।
पहुँचे जहाँ वे अज्ञता का द्वार जानो रुक गया,
वे झुक गये जिस ओर संसार मानो झुक गया॥

वर्णन उन्होंने जिस विषय का है किया, पूरा किया
मानो प्रकृति ने ही स्वयं साहित्य उनका रच दिया।
चाहे समय की गति कभी अनुकूल उनके हो नहीं,
हैं किन्तु निश्चल एक-से सिद्धान्त उनके सब कहीं॥

वे मेदिनी-तल में सुकृत के बीज बोते थे सदा,
परदुःख देख दयालुता से द्रवित होते थे सदा।
वे सत्त्वगुण-शुभ्रांशु से तम-ताप खाते थे सदा,
निश्चिन्त विघ्न-विहीन सुख की नींद सोते थे सदा॥

वे आर्य्य ही थे जो कभी अपने लिए जीते न थे;
वे स्वार्थ-रत हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे।
संसार के उपकार-हित जब जन्म लेते थे सभी,
निश्चेष्ट होकर किस तरह वे बैठ सकते थे कभी?

'भारत भारती' से

आदर्श

आदर्श जन संसार में इतने कहाँ पर हैं हुए?
सत्कार्य्य-भूषण आर्य्यगण जितने यहाँ पर हैं हुए।
हैं रह गये यद्यपि हमारे गीत आज रहे सहे।
पर दूसरों के भी वचन साक्षी हमारे हो रहे॥

गौतम, वसिष्ठ समान मुनिवर ज्ञानदायक थे यहाँ,
मनु, याज्ञवल्क्य-समान सप्तम विधि-विधायक थे यहाँ,
वाल्मीकि-वेदव्यास-से गुण-गान-गायक थे यहाँ,
पृथु, पुरु, भरत, रघु से अलौकिक लोक-नायक थे यहाँ॥

लक्ष्मी नहीं, सर्वस्व जावे, सत्य छोड़ेंगे नहीं;
अन्धे बनें पर सत्य से सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं
निज सुत-मरण स्वीकार है पर वचन की रक्षा[1] रहे,
है कौन जो उन पूर्वजों के शील की सीमा कहे?

सर्वस्व करके दान जो चालीस दिन भूखे रहे,
अपने अतिथि-सत्कार में फिर भी न जो रूखे रहे!
पर-तृप्ति कर निज तृप्ति मानी रन्तिदेव नरेश ने,
ऐसे अतिथि-सन्तोष-कर पैदा किये किस देश ने?

आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन-भक्षण के लिए,
जो बिक गए चाण्डाल के घर सत्य-रक्षण के लिए!

---

1. यह पद्य सत्यव्रत, अलर्क, मयूरध्वज और रुक्माङ्गद आदि सत्यप्रतिज्ञ राजाओं को लक्ष्य करके लिखा गया है। मयूरध्वज आदि की कथाएँ तो प्रसिद्ध ही हैं, सत्यव्रत की कथा इस प्रकार है—

राजा सत्यव्रत का नियम था कि उसके बाजार में जो चीजें बिकने के लिए आवें वे यदि दिन भर में न बिक सकें तो साँझ को स्वयं राजा उन्हें खरीद लेगा। राजा सर्वदा अपने इस नियम का पालन करता था। एक दिन एक लुहार लोहे की बनी हुई शनैश्चर की मूर्ति लाया और कहने लगा कि इसका मूल्य एक लाख रुपया है। पर जो कोई इसे खरीदेगा उसे लक्ष्मी, धर्म्म, कर्म्म और यश आदि सब छोड़ जायँगे। उसकी ऐसी बात सुनकर उस मूर्ति को किसी ने न खरीदा। नियमानुसार साँझ को वह मूर्ति राजा के सामने लायी गयी। राजा सब कुछ सुनकर भी उसको खरीद लिया। अपने नियम को नहीं तोड़ा। आधी रात को एक सुन्दर स्त्री ने आकर राजा से कहा कि मैं तुम्हारी राजलक्ष्मी हूँ, तुम्हारे यहाँ शनैश्चर आ गया है, अब मैं नहीं रह सकती। मुझको विदा कीजिए। राजा ने कहा— जाओ। इसी तरह धर्म्म, कर्म्म और यश भी विदा हुए। अन्त में सत्यदेव आये और बोले कि हे राजा! मैं सत्य हूँ। शनैश्चर के कारंण मैं अब नहीं रह सकता, जाता हूँ। राजा ने उठकर हाथ पकड़ लिया और कहा कि लक्ष्मी, धर्म्म और यश जायँ तो भले ही चले जायँ, पर आप कहाँ जाते हैं? आपको रखने के लिए ही तो मैंने शनैश्चर की मूर्ति ली है! सत्य से उत्तर देते न बना। जब सत्य न गया तब लक्ष्मी, धर्म्म और यश आदि सभी लौट आये।

दे दीं जिन्होंने अस्थियाँ परमार्थ-हित जानी जहाँ,
शिबि, हरिश्चन्द्र, दधीचि-से होते रहे दानी यहाँ॥

सत्पुत्र पुरु-से थे जिन्होंने तात-हित सब कुछ सहा,
भाई भरत-से थे जिन्होंने राज्य भी त्यागा अहा!
जो धीरता के, वीरता के प्रौढ़तम पालक हुए,
प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव तथा अभिमन्यु-सम बालक हुए॥

वह भीष्म का इन्द्रिय-दमन, उनकी धरा-सी धीरता,
वह शील उनका और उनकी वीरता, गम्भीरता,
उनकी सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता,
है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता॥

वर वीरता में भी सरसता वास करती थी यहाँ;
पर साथ ही वह आत्म-संयम था यहाँ का-सा कहाँ?
आकर करे रति-याचना जो उर्वशी-सी भामिनी[1],
फिर कौन ऐसा है, कहे, जो "मत कहो यों कामिनी"॥

यदि भूलकर अनुचित किसी ने काम कर डाला कभी,
तो वह स्वयं नृप के निकट दण्डार्थ जाता था तभी।
अब भी 'लिखित' मुनि का चरित वह लिखित है इतिहास में,
अनुपम सुजनता सिद्ध है जिसके अमल आभास में॥

'भारत भारती' से

●

1. अर्जुन जब दिव्यास्त्र प्राप्त करने के लिए इन्द्रलोक को गये तब वहाँ उर्वशी नाम की अप्सरा उनके रूप-गुण पर मोहित होकर एक दिन उनके पास आई और अनेक हाव-भाव दिखलाती हुई अपने ऊपर अनुरक्त होने के लिए उनसे प्रार्थना करने लगी। उसकी बातें सुनकर अर्जुन ने कहा कि तुम देवराज की सेवा में रहने वाली हो, अतएव मेरे लिए तुम शची के समान ही पूज्य हो। तुमको मुझसे ऐसी अनुचित बातें कदापि न कहनी चाहिए।

जयद्रथ-वध

जैसा किया होगा प्रथम वैसा हुआ परिणाम है,
माधव! विदा दो बस मुझे अब, वार वार प्रणाम है।
इस भाँति मरने के लिए यद्यपि नहीं तैयार हूँ,
पर धर्म्म-बन्धन-बद्ध हूँ मैं क्या करूँ लाचार हूँ॥
इस भाँति अर्जुन के बचन श्रीकृष्ण थे जब सुन रहे,
हँसकर जयद्रथ ने तभी ये विष-वचन उनसे कहे—
"गोविन्द! अब क्या देर है प्रण का समय जाता टला!
शुभ-कार्य्य जितना शीघ्र हो है नित्य उतना ही भला॥
सुनकर जयद्रथ का कथन हरि को हँसी कुछ आ गई,
गम्भीर श्यामल मेध में विद्युतच्छटा-सी छा गई।
कहते हुए यों—यह न उनका भूल सकता वेश है—
"हे पार्थ! प्रण पालन करो, देखो अभी दिन शेष है॥"
हो पूर्ण जब तक पार्थ-प्रति प्रभु का कथन ऊपर कहा,
तब तक महा अद्‌भुत हुआ यह एक कौतुक-सा अहा!
मार्तण्ड अस्ताचल निकट घन मुक्त-सा देखा गया,
है जान सकता कौन हरि का कृत्य नित्य नया-नया?
था पार्थ के हित के लिए यह खेल नटवर ने किया,
दिन शेष रहते सूर्य को था अस्त-सा दिखला दिया।
अनुकूल अवसर पर उसे फिर कर दिया यों व्यक्त है,
वह भक्तवत्सल भक्त पर रहता सदा अनुरक्त है॥
तत्काल अर्जुन की अचानक नींद मानो हट गई,
सब हो गई उनको विदित माया महा-विस्मयमयी,
अवलोक तब हरि को उन्होंने एक वार विनोद से,
निकटस्थ शीघ्र उठा लिया गाण्डीव अति आमोद से॥
इस स्वप्न के-से दृश्य से सब शत्रु विस्मित रह गये,
कर्त्तव्यमूढ़-समान वे नैराश्य-नद में बह गये!
उस काल उनका तेज मानो पार्थ को ही मिल गया,
तब तो सदा से सौ गुना मुख शीघ्र उनका खिल गया॥

हो भीम सात्यकि भी सजग आनन्द रव करने लगे,
निज यत्न निष्फल देखकर वैरी सभी डरने लगे
तब सम्मुख स्थित जाल-गत जो था हरिण-सा हो रहा,
उस खल जयद्रथ से कुपित हो या धनञ्जय ने कहा
"रे नीच! अब तैयार हो तू शीघ्र मरने के लिए,
मेरा यह अवसर समझ, प्रण-पूर्ण करने के लिए।
है व्यर्थ चेष्टा भागने की, मृत्यु का तू ग्रास है;
भज 'रामनाम' नृशंस! अब तो काल पहुँचा पास है॥"
गति देख अन्य न एक भी निज कर्म के दुर्दोष से,
करने लगा तत्क्षण जयद्रथ शस्त्र-वर्षा रोष से।
आशा नहीं रहती जगत में प्राण रहने की जिसे,
उसका भयङ्कर-वेग सहसा सह्य हो सकता किसे?
पर पार्थ ने सह ली व्यथा सब शत्रु के आघात की,
आनन्द के उत्थान में रहती नहीं सुध गात की।
गाण्डीव से तत्काल वे भी वाण बरसाने लगे,
जो उग्र उल्का-खण्ड से चण्डच्छटा छाने लगे॥
कर्णादि ने की व्यक्त फिर भी युद्ध कौशल की कला,
पर हो गई चेष्टा विफल सब, वस न उनका कुछ चला॥
विचलित दलित करता द्रुमों को प्रबल-झंझानिल यथा,
सब शत्रुओं को पार्थ ने पल में किया विह्वल तथा॥
फिर पुष्प-माला युक्त मन्त्रित दिव्य द्युति से ओध[1]-सा,
रक्खा धनञ्जय ने धनुष पर बाण एक अमोघ-सा।
क्षण भर उसे सन्धानने में वे यथा शोभित हुए,
हों भाल-नेत्र-ज्वाल हर ज्यों छोड़ते शोभित हुए॥
वह शर इधर गाण्डीव-गुण[2] से भिन्न जैसे ही हुआ,
धड़ से जयद्रथ का उधर सिर छिन्न वैसे ही हुआ।
रक्ताक्त वह सिर व्योम में उड़ता हुआ कुछ दूर-सा,
दीखा अरुणतम उस समय के अस्त होते सूर-सा॥

'जयद्रथ-वध' से

●

1. समूह, 2. गुण = प्रत्यञ्चा

पञ्चवटी

एक राज्य का मूढ़ जगत ने कितना महामूल्य रक्खा
हमको तो मानो वन में ही है विश्वानुकूल रक्खा॥
होता यदि राजत्व मात्र ही लक्ष्य हमारे जीवन का,
तो क्यों अपने पूर्वज उसको छोड़ मार्ग लेते वन का?
परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं,
किन्तु मुझे तो सीधे-सच्चे, पूर्व-भाव ही भाते हैं॥
जो हो, जहाँ आर्य रहते हैं वहीं राज्य वे करते हैं,
उनके शासन में वनचारी सब स्वच्छन्द विहरते हैं।
रखते हैं सयत्न हम पुर में जिन्हें पींजरों में कर बन्द;
वे पशु पक्षी भाभी से हैं हिले यहाँ स्वयमपि, सानन्द!
करते हैं हम पतित जनों में बहुधा पशुता का आरोप;
करता है पशु वर्ग किन्तु क्या निज निसर्ग नियमों का लोप?
मैं मनुष्यता को सुरत्य की जननी भी कह सकता हूँ,
किन्तु पतित को पशु कहना भी कभी नहीं सह सकता हूँ॥
आ आकर विचित्र पशु-पक्षी यहाँ बिताते दोपहरी,
भाभी भोजन देतीं. उनको, पञ्चवटी छाया गहरी।
चारु चपल बालक ज्यों मिलकर माँ को घेर खिझाते हैं,
खेल-खिझाकर भी आर्या को वे सब यहाँ रिझाते हैं!
गोदावरी नदी का तट यह ताल दे रहा है अब भी,
चंचल-जल कल-कल कर मानो तान दे रहा है अब भी!
नाच रहे हैं अब भी पत्ते, मन-से सुमन महकते हैं,
चन्द्र और नक्षत्र ललककर लालच भरे लहकते हैं॥
वैतालिक विहंग भाभी के सम्प्रति ध्यान लग्न-से हैं,
नये गान की रचना में वे कवि-कुल-तुल्य मग्न-से हैं।
बीच बीच में नर्तक केकी मानो यह कह देता है—
मैं तो प्रस्तुत हूँ देखें कल कौन बड़ाई लेता है॥
आँखों के आगे हरियाली रहती है हर घड़ी यहाँ,
जहाँ तहाँ झाड़ी में झिरती है झरनों की झड़ी यहाँ।

वन की एक एक हिमकणिका जैसी सरस और शुचि है,
क्या सौ-सौ नागरिक जनों की वैसी विमल रम्य रुचि है?
मुनियों का सत्संग यहाँ है, जिन्हें हुआ है तत्व-ज्ञान,
सुनने को मिलते हैं उनसे, नित्य नये अनुपम आख्यान।
जितने कष्ट-कण्टकों में है जिनका जीवन-सुमन खिला,
गौरव गन्ध उन्हें उतना ही अत्र तत्र सर्वत्र मिला।

'पञ्चवटी' से

उद्‌बोधन

अब भी समय है जागने का देख आँखें खोल के,
सब जग जगाता है तुझे, जग कर स्वयं जय बोल के।
निःशक्त यद्यपि हो चुकी है किन्तु तू न मरी अभी,
अब भी पुनर्जीवन-प्रदायक साज हैं सम्मुख सभी॥

हम कौन थे क्या हो गये हैं, जान लो इसका पता,
जो थे कभी गुरु है न उनमें शिष्य की भी योग्यता।
जो थे सभी से अग्रगामी, आज पीछे भी नहीं,
है दीखती संसार में विपरीतता ऐसी कहीं?

दुर्दैव-पीड़ित जो पुराने चिह्न कुछ कुछ रह गये,
देखो, न जाने भाव कितने व्यक्त करते हैं नये।
हा! क्या कहें आरम्भ ही में रुँध रहा है जब गला,
भगवान्! क्या से क्या हुए हम, कुछ ठिकाना है भला॥

कुछ काल में ये जीर्ण पहले चिह्न भी मिट जायँगे,
फिर खोजने से भी न हम सब मार्ग अपना पायँगे।
जातीय जीवन-दीप अब भी स्नेह पावेगा नहीं,
तो फिर अँधेरे में हमें कुछ हाथ आवेगा नहीं॥

अब भी सुधारेंगे न हम दुर्दैव-वश अपनी दशा,
तो नाम शेष हमें करेगा काल ले कर्कश कशा!
बस टिमटिमाता दीख पड़ता है आज जीवन-दीप है,
हा दैव! क्या रक्षा न होगी, सर्वनाश समीप है?

निज पूर्वजों का वह अलौकिक सत्य, शील निहार लो,
फिर ध्यान से अपनी दशा भी एक बार विचार लो।
जो आज अपने आपको यों भूल हम जाते नहीं,
तो यों कभी सन्ताप-मूलक शूल हम पाते नहीं॥

निज पूर्वजों के सद्‌गुणों को, यत्न से मन में धरो,
सब आत्म-परिभव-भाव तज निज रूप का चिन्तन करो।
निज पूर्वजों के सद्‌गुणों का गर्व जो रखती नहीं,
वह जाति जीवित जातियों में रह नहीं सकती कहीं॥

किस भाँति जीना चाहिए, किस भाँति मरना चाहिए;
सो सब हमें निज पूर्वजों से याद करना चाहिए।
पद-चिह्न उनके यत्नपूर्वक खोज लेना चाहिए,
निज पूर्व-गौरव-दीप को बुझने न देना चाहिए॥

'भारत भारती' से

●

जयशङ्कर प्रसाद
[1889–1937 ई०]

अरुण यह मधुमय देश हमारा

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा

सरस तामरस गर्भ विभा पर-नाच रही तरुशिखा मनोहर
छिटका जीवन हरियाला पर—मंगल कुंकुम सारा

लघु सुरधनु से पंख पसारे शीतल मलय समीर सहारे
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए—समझ नीड़ निज प्यारा

बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल
लहरें टकरातीं अनंत की—पाकर जहाँ किनारा

हेम-कुंभ ले उषा सवेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे
मदिर ऊँघते रहते जब—जगकर रजनी-भर तारा

'चंद्रगुप्त' से

हिमाद्रि तुंग शृंग से

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती-
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती-
अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ,
विकीर्ण मातृभूमि के-

सपूत मातृभूमि के-
रुको न शूर साहसी
अराति सैन्य सिंधु—सुबाड़वाग्नि-से जलो।
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो, बढ़े चलो॥

'चंद्रगुप्त' से

हमारा प्यारा भारतवर्ष

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार।
उषा ने हँस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व लोक में फैला फिर आलोक।
व्योम तम-पुंज हुआ तब नष्ट अखिल संसृति हो उठी अशोक।
विमल वाणी ने वीणा ली कमल-कोमल कर में सप्रीत।
सप्तस्वर सप्तसिंधु में उठे, छिड़ा तब मधुर साम-संगीत।
बचा कर बीज-रूप से सृष्टि, नाव पर झेल प्रलय का शीत।
अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण पथ में हम बढ़े अभीत।
सुना है दधीचि का यह त्याग हमारी जातीयता विकास।
पुरंदर ने पवि से है लिखा अस्थि-युग का मेरे इतिहास।
सिंधु-सा विस्तृत और अथाह एक निर्वासित का उत्साह।
दे रही अभी दिखाई भग्न मग्न रत्नाकर में वह राह।
धर्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि, कर दी बंद।
हमी ने दिया शांति-संदेश, सुखी होते देकर आनंद।
विजय केवल लोहे की नहीं, धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट् दया दिखलाते घर-घर घूम।
यवन को दिया दया का दान चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्ण भूमि को रत्न शील की सिंहल को भी सृष्टि।
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं।
हमारी जन्मभूमि थी यही, कहीं से हम आये थे नहीं।
जातियों का उत्थान-पतन आँधियाँ, झड़ी, प्रचंड समीर।
खड़े देखा झेला हँसते, प्रलय में पले हुए हम वीर।

चरित के पूत, भुजा में शक्ति, नम्रता रही सदा संपन्न।
हृदय के गौरव में था गर्व, किसी को देख न सके विपन्न।
हमारे संचय में था दान, अतिथि ने सदा हमारे देव।
वचन में सत्य, हृदय में तेज, प्रतिज्ञा में रहती थी टेव।
वही है रक्त, वही है देश, वही साहस है, वैसा ज्ञान।
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य्य-संतान।
जियें तो सदा उसी के लिए यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।

'स्कन्दगुप्त' से

●

माखनलाल चतुर्वेदी
[1886-1964 ई०]

मरण-त्योहार

क्यों न अब साबरमती पर नाज हो!
जब जवाहर शीश, मेरा ताज हो;
झिलमिले नक्षत्र थे, ग्रह भी बड़े,
श्री सुधाकर थे, उतरते से खड़े।

नाश का आकाश में तम-तोम था,
फैलकर भी विवश सारा व्योम था!
उस समय सहसा सफेदी वह उठी,
मोम की पिघली शिखाएँ, कह उठीं—

''नाश जी! नक्षत्र यदि लाचार हैं,
श्री सुधाकर भी उतरते द्वार हैं।
तो जलेंगी तेल बन निज कामना,
आइये, मिटकर करेंगी सामना।

जानती हैं जोर घर की वायु का,
जानती हैं समय, अपनी आयु का,
जानती बाजार दर अपनी अहो,
जानती हैं, वृष्टि के दिन, मत कहो।

जानती हैं—सब सबल के साथ हैं,
किन्तु रवि के भी हजारों हाथ हैं।
बे-कलेजे ही कठिन 'तम' लादकर,
अब श्मशानों को स्वयं आबाद कर।

एक से लग एक, हम जलती रहें,
और बलि-बहनें बढ़ें, फलती रहें,

सूर्य की किरनें, कभी तो आयेंगी,
जलन की घड़ियाँ, उन्हें ले जायेगी।

थीं जहाँ पर भट्टियाँ सब बुझ पड़ीं,
विश्व में चिनगारियाँ आगे बढ़ीं;
देव जीने दो, विमल चिनगारियाँ,
ये खिली हैं आत्म-बलि की क्यारियाँ!

जम्बुकेश, चलो! जहाँ संहार है,
वन्य पशुओं का लगा बाजार है;
आज सारी रात कूकेंगे वहाँ,
मोम-दीपों का मरण-त्यौहार है।''

'हिम किरीटिनी' से

युग-पुरुष

उठ-उठ तू, ओ तपी, तमोमय जग उज्ज्वल कर।
गूँजे तेरी गिरा कोटि भवनों में घर-घर।
गौरव का तू मुकुट पहन
युग के कर पल्लव
तेरा पौरुष जगे, राष्ट्र
हो उन्नत अभिनव।

तेरे कंधों लहरावे प्रतिभा की खेती,
तेरे हाथों चले नाव जग संकट खेती।
तुझ पर पागल बने आज उन्मत्त जमाना।
तेरे हाथों बुने सफलता ताना-बाना।
तू युग की हुँकार
अमर जीवन की वाणी,
तेरी साँसों अमर
हो उठे युग-कल्याणी।

तेरा पहरेदार विन्ध्य का दक्षिण-उत्तर।
तेरी ही गर्जना नर्मदा का कोमल स्वर।
तेरी जीवित साँस आज तुलसी की भाषा,
तेरा पौरुष सतत अमर जीवन की आशा।
जाग जाग उठ तपी तुझे
जग का आमंत्रण!
विभु दे तुझको उठा—
सौंप कर अमृत के कण!

तेरी कृति पर सजे हिमालय रजत मुकुट-सा,
सिंधु, इरावति बने सुहावन वैभव घट-सा,
गंगा-जमुना बहें तुम्हारी उर-माला-सी,
विहरित हरित स्वदेश करे, कृषि-जन-कमला-सी,
कमरबन्द नर्मदा बने
उठ सेना ना य क!
शस्त्र-सज्जिता तरल तापती
बने स हा य क!

तेरी असि-सी लटक चलें कृष्णा कावेरी,
आज सृजन में होड़ लगे विधना से तेरी,
लिख-लिख तू ओ तपी जगा उन्मत्त जमाना,
जिसने ऊँचा शीश किए जग को पहचाना।
तू हिमगिरि से उठा
कुमारी तक लहराया,
रतनाकर ले आज
चरण धोने को आया।

उठ ओ युग की अमर साँस, कृति की नव आशा
उठ ओ यशोविभूति, प्रेरणा की अभिलाषा,
तेरी आँखों सजे विश्व की सीमा-रेखा,
अँगुलियों पर रहें जगत् की गति का लेखा।

अमर निशानी

यह अमर निशानी किसकी है?
बाहर से जी, जी से बाहर
तक, आनी-जानी किसकी है?
दिल से, आँखों से, गालों तक
यह तरल कहानी किसकी है?
यह अमर निशानी किसकी है?

रोते-रोते भी आँखें मूँद
जायें, सूरत दिख जाती है,
मेरे आँसू में मुसक मिलाने
की नादानी किसकी है?
यह अमर निशानी किसकी है?

सूखी अस्थि, रक्त भी सूखा,
सूखे दृग के झरने,
तो भी जीवन हरा! कहो
मधुभरी जवानी किसकी है?
यह अमर निशानी किसकी है?

रैन अँधेरी, बीहड़ पथ है,
यादें थकी अकेली,
आँखें मूँदे जाती हैं,
चरणों की बाती किसकी है?
यह अमर निशानी किसकी है?

आँखें झुकीं पसीना उतरा,
सूझे ओर न छोर,
तो भी बढ़ूँ, खून में यह
दमदार रवानी किसकी है?
यह अमर निशानी किसकी है?

मैंने कितने धुन से साजे
मीठे सभी इरादे,
किन्तु सभी गल गये, कि
आँखें पानी-पानी किसकी हैं?
यह अमर निशानी किसकी है?

जी पर, सिंहासन पर,
सूली पर, जिसके संकेत चढ़ूँ
आँखों में चुभती भाती
सूरत मस्तानी किसकी है?
यह अमर निशानी किसकी है?

'हिम तरङ्गिनी' से

चरण चले, ईमान अचल हो

चरण चले, ईमान अचल हो
जब बलि रक्त-बिन्दु-निधि माँगे,
पीछे पलक, शीश कर आगे,
सौ-सौ युग अँगुली पर जागे,
चुम्बन सूली को अनुरागे,
जय कश्मीर हमारा बल हो,
चरण चले, ईमान अचल हो।

स्मरण वरणकर हिमगिरि का रथ,
तुम्हे पुकार रहा सागर पथ,
अणु से कहो, अमर हैं निर्भय,
बोल मूर्ख, मानवता की जय,
झंडा है नेपाल, सबल हो,
चरण चले, ईमान अचल हो।

अन्न और असि दो से न्यारा
गर्वित है भूदान हमारा,

सुन उस पंथी की स्वर-धारा,
जिसने भारतवर्ष सँवारा,
गोली राजघाट का बल हो
चरण बढ़े, ईमान अचल हो।

बलि कृति-कला त्रिवेणी की छवि,
गूँथ रहा, अपनी किरणें रवि,
उठती तरुणाई का वैभव
उतरे, बने संत, योद्धा, कवि।
भारत! लोक अमर उज्ज्वल हो,
चरण बढ़े, ईमान अचल हो।

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं मैं, सुरबाला के
गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊँ।
चाह नहीं, सम्राटों के शव
पर, हे हरि, डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवों के सिर पर
चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

●

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
[1897–1960 ई०]

यह है विप्लव का पथ, भाई

यह है विप्लव का पथ, भाई,
इस मारग में तुम्हें मिलेंगी कई नयी कलियाँ मुरझाईं
यह है विप्लव का पथ, भाई।

इस मारग में पड़े हुए हैं सुख की आकांक्षाओं के शव,
इस मारग में वैयक्तिक सब मनुहारें करतीं रोदन-रव;
इस मारग में सहयात्री हैं शोणित-स्वेद-सिक्त सब अनुभव;
इस मारग में फैल रही हैं चिर महाभिनिष्क्रमण-निकांई;
यह है विप्लव का पथ, भाई।

नव यौवन के सरस मनोरथ, मधु निशि के मदमाते सपने,
निपट पराये-से हैं ये अब, जो थे जीवन-संगी अपने;
हम भी कुछ खो गये लगा जब विप्लव-रव से अन्तर कँपने;
आया वह क्षण, जब नवयुग की लगी क्रान्ति से स्नेह-सगाई;
यह है विप्लव का पथ, भाई।

झाँझें बजीं मृदंगें गूँजीं, घण्टे घनक उठे घन-घन-घन,
शंख बजे, नक्कारे गरजे, अम्बर में भर गया तुमुल स्वन;
जब स्वयंवरा क्रान्ति पधारी करने निज वरमाला अर्पण,-
उस क्षण इस युग के नयनों में प्रलयंकारी लालिमा छाई!
यों फैला विप्लव-रंग भाई।

जब इस युग का हुआ क्रान्ति के ज्वालामय पट से गठ-बन्धन
जब दिग्वधुएँ नाच उठीं सब, हुआ धूलि कण-कण में स्पन्दन;
नाचा महत् कर्म जन-रंजन, शोषण-भंजन, भीति निकन्दन;
चालित हुए हमारे पग भी, हमने भी लकुटिया उठाई;
हम आये विप्लव पथ, भाई।

ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

ओ तुम मेरे प्यारे जवान
तुम मेरे गौरव मूर्तिमान!

आशाओं के तुम हो प्रकेत,
संघर्षों के तुम चिर-निकेत,
तुम महानाश के अग्रदूत;
नित निर्माणों के तुम निधान,
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

तुम महाविकट संहार रूप,
तुम सृजन-कुशल नव-नव अनूप,
तुम सदा असुन्दर के बैरी,
चिर सुन्दर के तुम यशोगान;
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

तुम रुद्र-रूप, तुम प्रलयंकर
तुम मदन-दहनकारी शंकर,
तुम दृढ़-प्रतिज्ञ, तुम अडिग धीर,
तुम चिर अधिज्य धन्वा महान्;
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

तुम काल-प्रभंजन परम प्रबल,
तुम जीवन-मलयानिल निर्मल,
तुम पुण्य कर्म-रति अति निरलस,
मधु स्वप्नों के तुम सुरस खान;
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

आदर्श-पुंज तुम अति प्रचण्ड,
तुम मूर्तिमन्त दृढ़ न्याय-दण्ड
तुम साम्य-सन्तुलन-भाव अडिग,
तुम नवल कल्पना की उड़ान;
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

तुम क्रुद्ध गभीर विरोध-नाद,
तुमको भीषण लोकापवाद—
कब चलित कर सका, बोलो तो?
तव पग में आयी कब थकान?
तुम मेरे गौरव मूर्तिमान!

सर्वार्पण की उमंग हिय भर,
तुम सिर ले चले हथेली पर;
दुन्दुभि की गूँज उठी,
नभ में छायी बलिदान-तान;
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

तव बलिदानों की देख लड़ी,
शिवि की गाथा भी मन्द पड़ी;
तव प्राणदान के निकट पड़ा—
फीका दधीचि का अस्थि-दान;
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

लखकर तव कर्मठता अधकित,
है कर्मयोग भी स्वयं चकित,
लख तुम्हें अलिप्त, असंग-भाव—
है स्वयं प्रणत तव सन्निधान;
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

संकुचित स्वार्थ की, यश, धन की
लौकिकता की, या जीवन की,—
यह चाह कभी व्यापी न तुम्हें,
तुम सदा अनिगित, सावधान,
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

जब मेरे नभ में छाये घन,
अवरुद्ध हुई जब ज्योति-किरण,
तब बनकर विकट प्रभंजन तुम

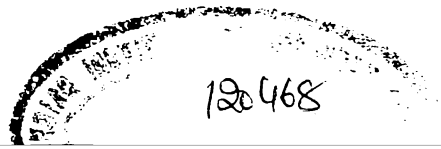
12468

ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

ओ तुम मेरे प्यारे जवान
तुम मेरे गौरव मूर्तिमान!

आशाओं के तुम हो प्रकेत,
संघर्षों के तुम चिर-निकेत,
तुम महानाश के अग्रदूत;
नित निर्माणों के तुम निधान,
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

तुम महाविकट संहार रूप,
तुम सृजन-कुशल नव-नव अनूप,
तुम सदा असुन्दर के बैरी,
चिर सुन्दर के तुम यशोगान;
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

तुम रुद्र-रूप, तुम प्रलयंकर
तुम मदन-दहनकारी शंकर,
तुम दृढ़-प्रतिज्ञ, तुम अडिग धीर,
तुम चिर अधिज्य धन्वा महान्;
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

तुम काल-प्रभंजन परम प्रबल,
तुम जीवन-मलयानिल निर्मल,
तुम पुण्य कर्म-रति अति निरलस,
मधु स्वप्नों के तुम सुरस खान;
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

आदर्श-पुंज तुम अति प्रचण्ड,
तुम मूर्तिमन्त दृढ़ न्याय-दण्ड
तुम साम्य-सन्तुलन-भाव अडिग,
तुम नवल कल्पना की उड़ान;
ओ तुम मेरे प्यारे जवान!

तुम क्रुद्ध गभीर विरोध-नाद,
तुमको भीषण लोकापवाद—
कब चलित कर सका, बोलो तो?
तव पग में आयी कब थकान?
तुम मेरे गौरव मूर्तिमान!

सर्वार्पण की उमंग हिय भर,
तुम सिर ले चले हथेली पर;
दुन्दुभि की गूँज उठी,
नभ में छायी बलिदान-तान;
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

तव बलिदानों की देख लड़ी,
शिवि की गाथा भी मन्द पड़ी;
तव प्राणदान के निकट पड़ा—
फीका दधीचि का अस्थि-दान;
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

लखकर तव कर्मठता अधकित,
है कर्मयोग भी स्वयं चकित,
लख तुम्हें अलिप्त, असंग-भाव—
है स्वयं प्रणत तव सन्निधान;
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

संकुचित स्वार्थ की, यश, धन की
लौकिकता की, या जीवन की,—
यह चाह कभी व्यापी न तुम्हें,
तुम सदा अनिगित, सावधान,
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

जब मेरे नभ में छाये घन,
अवरुद्ध हुई जब ज्योति-किरण,
तब बनकर विकट प्रभंजन तुम

120468

चमकाने आये भासमान,
तुम मेरे गौरव मूर्त्तिमान!

अपनी धुन में वन-वन डोले,
रण में जूझे तुम बिन बोले,
तव बलि-वेदी की ज्वाला से,
हो गया विनिर्मित नव-विहान;
तुम मेरे गौरव मूर्तिमान!

सैनिक, बोल!

सैनिक, बोल, रगो में तेरी,
शोणित है या ठण्डा पानी?
बतला, तेरे जीवन में है
लुंज बुढ़ौती या कि जवानी?

यदि तेरी नस-नस में बहती
वेगवती शोणित की धारा,-
राख हुआ है नहीं अभी यदि,
तेरे यौवन का अंगारा,-
तो क्यों झाँक रही है तेरे
नयनों से यह निपट निराशा?
तू क्यों है उदास निज मन में?
क्यों मुरझी है तेरी आशा?

निकला था तू जब कि जूझने
धारण कर सैनिक का बाना,-
जबकि बज उठा था रण-धौंसा,
जब गूँजा था युद्ध-तराना,-
तब क्या तुझसे कहा गया था
कि हैं सुमन ही तेरे मग में?
क्या तुझको यह ज्ञात नहीं था
कि हैं शूल अगणित मारग में?

फिर, यदि आज चुभे है काँटे
तो तू क्यों अकुलाये मन में?
समझ-बूझ कर ही ओ सैनिक,
तू सम्मिलित हुआ है रण में!

है तेरा रण पुण्य-प्रणोदक,
तेरा रण जन-मंगलकारी,
तेरा जीवन नित्य निवेदित,
तेरे कर्म अभय-संचारी;

देख रही है यह मानवता
आतुरता से तेरी गति-विधि,
क्षण-क्षण तुझे निहार रहे हैं,
ये सब बूढ़े भूधर, वारिधि;

तेरा ही मुँह देख रहे हैं
धरती के सब पाहन, जंगल,
उझक निहार रहे हैं तुझको
सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, खमण्डल!

प्रगति-प्रेरणा चिन्तातुर-सी
देख रही है तेरे पग-डग;
और विकास निहार रहा है
तेरा यह ऊँचा-नीचा मग;

अरे, हुई हैं तुझमें केन्द्रित,
इस विसृष्टि की सब आशाएँ;
तुझमें ही तो मूर्त हुई हैं
ऊर्ध्व-गमन की अभिलाषाएँ;

तू ही है प्रतीक, ओ सैनिक,
जन-विकास-नोदना-व्यथा का,
तू ही पुंजीभूत रूप है
सिरजन की इतिहास-कथा का!

दग्ध हो रहे हैं मेरे जन

हाय! इन्हीं आँखों से देखे
ज्वाला में लिपटे मानव-तन
होते भस्मीभूत विलोके
मैंने अपने ही सब जन-गण।

आज चतुर्दिक् धधक रही है
अति विकराल भूख की होली,
और बनी जन-गण की आँखें
फैली, फटी भीख की झोली!

देखो, छाती पर पत्थर रख,
वह समूह नर-कंकालों का।
देखो, झुण्ड आ रहा है वह
भूखे, नंगे कंगालों का!

यूँ तो वह आ नहीं रहा है,
वह तो रंच लड़खड़ाता है,
सामाजिकता के पिंजड़े में
पंछी तनिक फड़फड़ाता है!

आज सुन रहा हूँ मैं भीषण
प्राण-हरण का घण्टा घन-घन!
देख रहा हूँ विकट भूख की
ज्वाला में लिपटे मानव-तन!

सड़े भात के लिए श्वान को
ओ' मानव को लड़ते देखा,
पति-पत्नी को इक रोटी के
हेतु नितान्त झगड़ते देखा;

मानव ने कुत्ते को काटा;
कुत्ते ने मानव को काटा;
पत्नी ने पति को नोंचा औ'
पति ने एक जमाया चाँटा!

मैंने भूखे शिशु को भूखी
माँ के स्तन चिचोड़ते देखा,
मैंने भूखे शिशु की भूखी
माँ को प्राण तोड़ते देखा!
सुन लो उस शव की छाती से
चिपटे भूखे शिशु का क्रन्दन!
देखो, विकट भूख-ज्वाला में
दग्ध हो रहे हैं मानव-तन!
देखो, भूख-भरी वे आँखें,
देखो प्यास-भरे वे लोचन,
साँस-भरे, उच्छ्वास भरे वे,
दुस्सह त्रास भरे वे लोचन!
याचनार्थ फैली वह हड्डी,
देखो, इसे हाथ कहते हैं!
पथ पर रख के ढेर निहारो,
इसको बन्धु-घात कहते हैं!
हम, जो हैं भर-पेट खा रहे,
अरे वही उत्तरदायी हैं;
हम जो मौज कर रहे हैं नित
वे ही तो शोणित-पायी हैं!
हमी पातकी हैं कि आज यों
तिल-तिलकर मरते हैं निज जन;
हमीं पातकी हैं कि भूख की;
ज्वाला में जलते हैं जन-गण!
हम पत्थर हैं, या कायर हैं
जो यह सर्वनाश लखकर भी-
रच न सके नव सामाजिक क्रम,
ये इतने कटु फल चखकर भी!
क्या यह बात असम्भव थी कुछ
कि सब सूत्र अपने कर होते?

अपना घर अपना ही होता
यदि हम कुछ कम कायर होते!
तब देखते कि क्षुधा-सिंहनी
इस घर में कैसे मँडराती?
तब यह शस्य-श्यामला पृथिवी
कंचन क्यों न उगलती जाती?
किसे दोष दें? हाय! बने हैं
चिर अभिशाप-ग्रस्त अपने तन!
इसी लिए, इस भूख-चिता में
दग्ध हो रहे हैं निज जन-गण!

जूठे पत्ते

क्या देखा है तुमने नर को नर के आगे हाथ पसारे?
क्या देखे हैं तुमने उसकी आँखों में खारे फव्वारे?
देखें हैं? फिर भी कहते हो कि तुम नहीं हो विप्लवकारी?
तब तो तुम हिजड़े हो, या हो महा भयंकर अत्याचारी!

अरे चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा : क्यों न लगा दूँ आग इस दुनिया-भर को?
यह भी सोचा : क्यों न टेंटुआ घोंटा जाय स्वयं जगपति का?
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।

जगपति कहाँ, अरे, सदियों से वह तो हुआ राख की ढेरी;
वरना समता-संस्थापन में लग जाती क्या इतनी देरी?
छोड़ आसरा अलख शक्ति का; रे नर, स्वयं जगत्पति तू है,
तू यदि जूठे पत्ते चाटे, तो तुझ पर लानत है, थू है!

कैसा बना रूप यह तेरा, घृणित, पतित, वीभत्स, भयंकर!
नहीं याद क्या तुझको, तू है चिर सुन्दर, नवीन प्रलयंकर?
भिक्षा-पात्र फेंक हाथों से; तेरे स्नायु बड़े बलशाली,
अभी उठेगा प्रलय नींद से, तनिष्क बजा तू अपनी ताली।

ओ भिखमंगे, अरे पराजित, ओ मजलूम, अरे चिरदोहित,
तू अखण्ड भाण्डार शक्ति का; जाग, अरे निद्रा-सम्मोहित,
प्राणों को तड़पाने वाली हुंकारों से जल-थल भर दे,
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित फलीता धर दे।

भूखा देख तुझे गर उमड़े आँसू नयनों में जग-जन के,-
तो तू कह दे : नहीं चाहिए हमको रोने वाले जनखे;
तेरी भूख; असंस्कृति तेरी, यदि न उभाड़ सकें क्रोधानल,-
तो फिर, समझूँगा कि हो गयी सारी दुनिया कायर निर्बल।

सभी कविताएँ 'प्रलयंकर' से

●

सुभद्राकुमारी चौहान
[1904–1961 ई०]

झाँसी की रानी

सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में
वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलों के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

कानपुर के नाना की मुँहबोली बहन 'छबीली' थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह सन्तान अकेली थी,
नाना के संग पढ़ती थी वह, नाना के संग खेली थी,
बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी,
वीर शिवाजी की गाथाएँ
उसको याद जबानी थीं।
बुन्देले हरबोलो के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना, ये थे उसके प्रिय खिलवार,

महाराष्ट्र-कुल-देवी उसकी
भी आराध्य भवानी थी।
बुन्देले हरबोलो के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई, खुशियाँ छाई झाँसी में,
सुभट बुंदेलों की विरुदावलि-सी वह आई झाँसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया,
शिव से मिली भवानी थी।
बुन्देले हरबोलो के मुँह
हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छायी,
किन्तु कालगति चुपके-चुपके काली घटा घेर लायी,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भायीं,
रानी विधवा हुई हाय! विधि को भी नहीं दया आयी,

जलियाँवाले बाग में वसन्त

यहाँ कोकिला नहीं, काक हैं शोर मचाते।
काले-काले कीट, भ्रमर का भ्रम उपजाते॥
कलियाँ भी अधखिली, मिली हैं कण्टक-कुल से।
वे पौधे, वे पुष्प, शुष्क हैं अथवा झुलसे॥

परिमल-हीन पराग दाग-सा बना पड़ा है।
हा! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है॥

आओ, प्रिय ऋतुराज! किन्तु धीरे से आना।
यह है शोक-स्थान यहाँ मत शोर मचाना॥

वायु चले, पर मन्द चाल से उसे चलाना।
दुख की आहें संग उड़ाकर मत ले जाना॥
कोकिल गावे, किन्तु राग रोने का गावे।
भ्रमर करे गुंजार, कष्ट की कथा सुनावे॥

लाना सँग में पुष्प, न हों वे अधिक सजीले।
हो सुगन्ध भी मन्द, ओस से कुछ-कुछ गीले॥
किन्तु न तुम उपहार-भाव आकर दरसाना।
स्मृति में पूजा-हेतु यहाँ थोड़े बिखराना॥

कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा-खाकर।
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर॥
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं।
अपने प्रिय परिवार-देश से भिन्न हुए हैं॥

कुछ कलियाँ अधखिली यहाँ इसलिए चढ़ाना।
करके उनकी याद अश्रु की ओस बहाना॥
तड़प-तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर।
शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जाकर॥

यह सब करना, किन्तु
बहुत धीरे-से आना।
यह है शोक-स्थान
यहाँ मत शोर मचाना।

स्वागत-गीत

कर्म के योगी, शक्ति-प्रयोगी,
देश-भविष्य सुधारियेगा।
हाँ वीर-वेश के दीन देश के,
जीवन-प्राण पधारियेगा॥

तुम्हारा कर्म-चढ़ाने को हमें डोर हुआ।
तुम्हारी बातों से दिल में हमारे जोर हुआ॥
तुम्हें कुचलने को दुश्मन का जी कठोर हुआ।
तुम्हारे नाम का हर ओर आज शोर हुआ॥

हाँ पर उपकारी, राष्ट्र-बिहारी,
कर्म का मर्म सिखाइयेगा॥

तुम्हारे बच्चों को कष्टों में आज याद हुई।
तुम्हारे आने से पूरी सभी मुराद हुई॥
गुलामखानों में राष्ट्रीयता आबाद हुई।
मादरे हिन्द यों बोली कि मैं आजाद हुई॥

हों, दीन के भ्राता, संकट त्राता
जी की जलन बुझाइयेगा॥

राष्ट्र ने कहा कि महायुद्ध का नियोग करो।
कँपा दो विश्व को, अब शक्तिं का प्रयोग करो॥
हटा दो दुश्मनों को, डट के असहयोग करो।
स्वतन्त्र माता को करके, स्वराज्य भोग करो॥

हाँ, हिंसा हारी, शस्त्र-प्रहारी
रार की रीति सिखाइयेगा॥

स्वदेश के प्रति

आ, स्वतन्त्र प्यारे स्वदेश आ,
स्वागत करती हूँ तेरा।
तुझे देख कर आज हो रहा
दूना प्रमुदित मन मेरा॥

आ, उस बालक के समान
जो है गुरुता का अधिकारी।

आ, उस युवक-वीर-सा जिसको
विपदाएँ ही हैं प्यारी॥

आ, उस सेवक के समान तू
विनय-शील अनुगामी-सा।
अथवा आ तू युद्ध क्षेत्र में
कीर्ति-ध्वजा का स्वामी-सा॥

आशा की सूखी लतिकाएँ
तुझको पा, फिर लहरायीं।
अत्याचारी की कृतियों को
निर्भयता से दरसायीं॥

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

वीरों का कैसा हो वसन्त ?
आ रही हिमाचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार,
प्राची, पश्चिम, भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग,
हैं वीर देश में किन्तु कन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारु बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आये हैं आदि-अन्त
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

गलबाहें हों, या हो कृपाण,
चल-चितवन हो, या धनुष-बाण,
हो रस-विलास या दलित-त्राण,
अब यही समस्या है दुरन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके ! तुझमें क्यों लगी आग ?
हे कुरुक्षेत्र ! अब जाग, जाग
बतला अपने अनुभव अनन्त
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

हल्दी-घाटी के शिला-खण्ड,
ऐ दुर्ग ! सिंह-गढ़ के प्रचण्ड,
राणा, ताना का कर घमण्ड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बँधी, स्वच्छन्द नहीं,
फिर हमें बतावे कौन ? हन्त !
वीरों का कैसा हो वसन्त ?

सभी कविताएँ 'मुकुल' से

●

रामधारी सिंह 'दिनकर'
[1908–1974 ई०]

प्रभाती

रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

[1]

भेदमय संदेश सुन पुलकित
खगों ने चंचु खोली;
प्रेम से झुक-झुक प्रणति में
पादपों की पंक्ति डोली;
दूर प्राची की तटी से
विश्व का तृण-तृण जगाता;
फिर उदय की वायु का वन में
सुपरिचित नाद आया।
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

[2]

व्योम-सर में हो उठा विकसित
अरुण आलोक-शतदल;
चिर-दुखी धरणी विभा में
हो रही आनन्द-विह्वल।
चूमकर प्रति रोम से, सिर
पर चढ़ा वरदान प्रभु का,
रश्मि-अंजलि में पिता का
स्नेह-आशीर्वाद आया।
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

[3]

सिन्धु-तट का आर्य भावुक
आज जग मेरे हृदय में,
खोजता उद्‌गम विभा का
दीप्त-मुख विस्मित उदय में;
उग रहा जिस क्षितिज-रेखा
से अरुण, उसके परे क्या?
एक भूला देश धूमिल-
सा मुझे क्यों याद आया?
रे प्रवासी, जाग, तेरे
देश का संवाद आया।

'रसवन्ती' से

एक बार फिर स्वर दो

एक बार फिर स्वर दो।
जिस गंगा के लिए भगीरथ सारी आयु तपे थे,
और हुई जो विवश छोड़ अम्बर भू पर बहने को
लाखों के आँसुओं, करोड़ों के हाहाकारों से;
लिये जा रहा इन्द्र कैद करने को उसे महल में।
सींचेगा वह गृहोद्यान अपना इसकी धारा से
और भगीरथ के हाथों में डण्डा थमा कहेगा,
अगर मार्क्स को मार सके तुम, हम तुमको पूजेंगे;
हार गये तो, गंगा की धारा जो ले आये हो,
उसी धार में बोर-बोर हम तुम्हें मार डालेंगे।

एक बार फिर स्वर दो।
देख रहे हो, गाँधी पर कैसी विपत्ति आयी है?
तन तो उसका गया, नहीं क्या मन भी शेष बचेगा?
चुरा ले गया अगर भाव-प्रतिमा कोई मन्दिर से,
उन अपार, असहाय, बुभुक्षित लोगों का क्या होगा,
जो अब भी हैं खड़े मौन गाँधी से आस लगा कर?

एक बार फिर स्वर दो।
कहो, सर्वत्यागी वह संचय का सन्तरी नहीं था,
न तो मित्र उन साँपों का जो दर्शन विरच रहे हैं
दंश मारने का अपना अधिकार बचा रखने को।

एक बार फिर स्वर दो।
उन्हें पुकारो, जो गाँधी के सखा, शिष्य, सहचर हैं।
कहो, आज पावक में उनका कंचन पड़ा हुआ है।
प्रभापूर्ण हो कर निकला यह तो पूजा जायेगा;
मलिन हुआ तो भारत की साधना बिखर जायेगी।

एक बार फिर स्वर दो।
कहो, शान्ति का मन अशान्त है, बादल गुमर रहे हैं,
तप्त, ऊमसी हवा टहनियों में छटपटा रही है।
गाँधी अगर जीत कर निकले, जलधारा बरसेगी,
हारे तो तूफान इसी ऊमस से फूट पड़ेगा।

'परशुराम की प्रतीक्षा' से

कर्ण

मिला कैसे समय निर्भीत है यह?
हुई सौभाग्य से ही जीत है यह।
नहीं यदि आज ही वह काल सोता,
न जानें, क्या समर का हाल होता?

उदासी में भरे भगवान् बोले,
"न भूलें आप केवल जीत को ले।
नहीं पुरुषार्थ केवल जीत में है।
विभा का सार शील पुनीत में है।

"विजय, क्या, जानिये, बसती कहाँ है?
विभा उसकी अजय हँसती कहाँ है?
भरी वह जीत के हुङ्कार में है,
छिपी अथवा लहू की धार में है?

हुआ जानें नहीं, क्या आज रण में?
मिला किसको विजय का ताज रण में?
किया क्या प्राप्त? हम सबने दिया क्या?
चुकाया मोल क्या? सौदा लिया क्या?

समस्या शील की, सचमुच गहन है।
समझ पाता नहीं कुछ क्लान्त मन है।
न हो निश्चिन्त कुछ अवधानता है।
जिसे तजता, उसी को मानता है।

मगर, जो हो, मनुज सुवरिष्ठ था वह।
धनुर्धर ही नहीं, धर्मिष्ठ था वह।
तपस्वी, सत्यवादी था, व्रती था,
बड़ा ब्रह्मण्य था, मन से यती था।

हृदय का निष्कपट, पावन क्रिया का,
दलित-तारक, समुद्धारक त्रिया का।
बड़ा बेजोड़ दानी था, सदय था,
युधिष्ठिर! कर्ण का अद्‌भुत हृदय था।

किया किसका नहीं कल्याण उसने?
दिये क्या-क्या न छिपकर दान उसने?
जगत् के हेतु ही सर्वस्व खोकर
मरा वह आज रण में निःस्व होकर।

उगी थी ज्योति जग को तारने को।
न जनमा था पुरुष वह हारने को।
मगर, सब कुछ लुटा कर दान के हित,
सुयश के हेतु, नर-कल्याण के हित।

दया कर शत्रु को भी त्राण देकर,
खुशी से मित्रता पर प्राण देकर,
गया है कर्ण भू को दीन करके,
मनुज-कुल को बहुत बलहीन करके।

युधिष्ठिर! भूलिये, विकराल था वह,
विपक्षी था, हमारा काल था वह।
अहा! वह शील में कितना विनत था?
दया में, धर्म में कैसा निरत था!

समझ कर द्रोण मन में भक्ति भरिये,
पितामह की तरह सम्मान करिये।
मनुजता का नया नेता उठा है।
जगत् से ज्योति का जेता उठा है।

'रश्मिरथी' (सप्तम सर्ग) से

हिमालय

तू तरुण, देश से पूछ, अरे!
गूँजा यह कैसा ध्वंस-राग?
अम्बुधि-अन्तस्तल-बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग?

प्राची के प्रांगण-बीच देख,
जल रहा स्वर्ण-युग-अग्नि ज्वाल,
तू सिंहनाद कर जाग तपी!
मेरे नगपति! मेरे विशाल!

रे! रोक युधिष्ठिर को न यहाँ,
जाने दे उनको स्वर्ग धीर!
पर, फिरा हमें गाण्डीव-गदा,
लौटा दे अर्जुन-भीम वीर।

कह दे शंकर से आज करें,
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार;
सारे भारत में गूँज उठे,
'हर-हर-बम' का फिर महोच्चार।

ले अँगड़ाई उठ, हिले धरा,
कर निज विराट् स्वर में निनाद,

तू शैल-राट् हुंकार भरे,
फट जाय कुहा, भागे प्रमाद।

तू मौन त्याग, कर सिंहनाद,
रे तपी! आज तप का न काल,
नवयुग-शंख-ध्वनि जगा रही,
तू जाग-जाग मेरे विशाल!

'हुङ्कार' से

शान्ति

धर्मराज, यह भूमि किसी की
नहीं क्रीत है दासी,
हैं जन्मना समान परस्पर
इसके सभी निवासी।

है सबको अधिकार मृत्ति का
पोषक-रस पीने का,
विविध अभावों से अशंक हो—
कर जग में जीने को।

सबको मुक्त प्रकाश चाहिए,
सबको मुक्त समीकरण,
बाधा-रहित विकास, मुक्त
आशंकाओं से जीवन।

उद्भिज-निभ चाहते सभी नर
बढ़ना मुक्त गगन में,
अपना चरम विकास खोजना
किसी प्रकार भुवन में।

लेकिन, विघ्न अनेक अभी
इस पथ में पड़े हुए हैं,
मानवता की राह रोक कर
पर्वत अड़े हुए हैं।

न्यायोचित सुख सुलभ नहीं
जब तक मानव-मानव को,
चैन कहाँ धरती पर, तब तक
शान्ति कहाँ इस भव को?

जब तक मनुज-मनुज का यह
सुख-भाग नहीं सम होगा,
शमित न होगा कोलाहल,
संघर्ष नहीं कम होगा।

'कुरुक्षेत्र' से

●

परिशिष्ट

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म झाँसी जनपद के चिरगाँव नामक गाँव में हुआ था। विद्यालय की शिक्षा इनकी बहुत कम हो पायी थी। सारा ज्ञान इन्होंने स्वाध्याय से ही प्राप्त किया। पारिवारिक वैष्णव संस्कार की छाप बचपन से लेकर जीवनपर्यन्त उन पर रही। काव्य-प्रतिभा और प्रवृत्ति तो उनमें थी ही ज्ञानार्जन के साथ वह और आगे बढ़ी और वे राष्ट्रकवि का गौरव प्राप्त करने में सफल हुए। गुप्तजी समन्वयवादी प्रकृति के व्यक्ति थे जिनके जीवन और काव्य में गाँधीजी और महावीरप्रसाद द्विवेदी के साथ भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों का बहुत बड़ा योगदान है। उनकी सारी रचनाओं में भारतीय जीवन के इन दो महापुरुषों के आदर्शों की अनुगूँज सुनी जा सकती है।

गुप्तजी की 'हेमन्त' शीर्षक पहली कविता सन् 1905 में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। उसके पश्चात् लगभग तीन दशकों तक वे अनवरत लिखते रहे। उन्होंने दो प्रबन्ध काव्यों के साथ उन्नीस खण्डकाव्य, बाईस लघु काव्य और तीन नाटकों की रचना के अलावा बँगला और संस्कृत से काव्यों का अनुवाद भी किया। उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ भारत-भारती, पंचवटी, हुंकार, साकेत आदि है।

हिन्दी नवजागरणकाल के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र माने जाते हैं। उन्हीं की प्रेरणा से हिन्दी कविता को नया आयाम मिला। द्विवेदीयुगीन काव्य में राष्ट्रप्रेम की भावना अधिक सशक्त रूप में अभिव्यक्त होती है जिसके प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ही हैं। उन्होंने अपनी कविता में राष्ट्रीय समस्याओं को वाणी दी जिसमें परम्परा और नवीनता का अद्‌भुत समन्वय है। वैष्णव भक्त होते हुए भी उन्होंने राम को लोक धरातल पर उतार कर जो कार्य किया है उसमें युग की नवीन चेतना का संयोजन है। गुप्तजी की अधिकांश रचनाएँ इतिहास और पुराण पर आधारित हैं जो हमारी संस्कृति के अजस्य स्रोत है। इसी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से उन्होंने ऐसे-ऐसे पात्रों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है जो उसकी युगीन चेतना को प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार गुप्तजी प्राचीन आदर्शों के आधार पर समाज के नवजागरण का संदेश देते हैं और भारतीय संस्कृति को एक नया आयाम भी। उनका मर्यादावादी मानववाद ही उन्हें राष्ट्रकवि के रूप में विख्यात करता है।

●

जयशङ्कर प्रसाद

आधुनिक हिन्दी कविता के प्रमुख रचनाकार स्व० जयशङ्कर प्रसाद का जन्म काशी के सुप्रसिद्ध व्यवसायी सुँघनी साहु के परिवार में हुआ था। इनकी स्कूली शिक्षा केवल कक्षा 7 तक हुई थी। किन्तु स्वाध्याय द्वारा इन्होंने भारत के इतिहास-संस्कृति तथा साहित्य का गहन अध्ययन किया।

इनकी बारह वर्ष की अवस्था थी तभी उनके पिता का देहान्त हो गया। 5 वर्षों के अन्दर प्रसादजी की माता और ज्येष्ठ भ्राता शम्भुरत्नजी का भी निधन हो गया। उन्हें परिवार का भारी उत्तरदायित्व सँभालना पड़ा। उनकी भाभी ने प्रसादजी का पुत्रवत पालन किया।

प्रसादजी ने काव्य, नाटक, कहानी, उपन्यास सभी विधाओं में रचना की। प्रसादजी के ऐतिहासिक नाटकों में स्थल-स्थल पर पात्र अवसरानुकूल काव्य पाठ करते हैं जिससे राष्ट्रीयता का बोध होता है। उनकी रचनाओं में चित्रात्मकता, सांस्कृतिक चेतना, देशप्रेम तथा कल्पना की प्रबलता है। उनके शब्द चयन में लय तथा ध्वन्यात्मकता है जिससे संगीत का सृजन होता है। प्रसादजी स्वदेश-रक्षा और स्वदेश के प्रति प्रतिबद्ध थे। उनकी पुस्तक में संकलित कविताएँ प्रसादजी के उद्‌बोधन गान हैं जिससे उनकी जातीय स्मृति और उनके जातीय गरिमा-बोध को रेखांकित करती हैं। प्रसादजी का समस्त साहित्य मानवीय और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित है।

उनकी काव्य रचनाओं में कामायनी, आँसू, लहर आदि, नाटक, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि उपन्यास में कंकाल और तितली, कहानी संग्रह आँधी, प्रतिध्वनि, इन्द्रजाल, आकाशदीप आदि प्रमुख हैं।

●

पं० माखनलाल चतुर्वेदी

'एक भारतीय आत्मा' के नाम से ख्यात पं० माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म मध्यप्रदेश के होशंगाबाद जनपद में बाबई नामक गाँव में हुआ था। उस समय की नार्मल शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् वे अध्यापक हो गये किन्तु प्रवृत्ति से पत्रकार होने के नाते इनका अधिकांश जीवन पत्रकार रूप में ही व्यतीत हुआ। स्वाध्याय से ही उन्होंने बंगला, गुजराती, मराठी, संस्कृत तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। वे जबलपुर से प्रकाशित होने वाले 'कर्मवीर' तथा कानपुर से प्रकाशित होने वाली 'प्रभा' तथा 'प्रताप' पत्रिकाओं के सम्पादक रहे।

चतुर्वेदीजी निर्भीक पत्रकार रहे हैं और राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने के कारण कई बार जेल भी गये। उनकी अधिकांश कविताएँ जेल में ही लिखी गयीं। उनके जीवन-दर्शन पर वैष्णवी संस्कारों, स्वामी रामतीर्थ और माधवराव सप्रे के सामाजिक विचारों तथा महात्मा गाँधी के दर्शन की छाप है। साहित्य के क्षेत्र में कविता के अतिरिक्त उन्होंने नाटक, गद्य काव्य और कहानियाँ भी लिखीं। इनकी उल्लेखनीय रचनाओ में कृष्णार्जुन युद्ध, हिमकिरीटनी, हिमतरंगिणी, माता, युग चरण आदि कृतियाँ आती हैं। 'साहित्य देवता' इनका गद्यकाव्य है।

चतुर्वेदीजी ने जीवनपर्यन्त देश के उद्धार और समाज कल्याण के लिए संघर्ष किया। उन्होंने परोपकार और साधना को जीवन का आदर्श बनाने की प्रेरणा दी। उन्होंने ओजस्वी भाषा में देश-प्रेम एवं राष्ट्रीयता का उद्घोष करने वाली कविताएँ लिखी। उनका विचार था—"काव्य विचार और जीवन के बीच की सुनहली कड़ी है। अन्त:करण की मनमोहिनी उथल-पुथल व कष्ट में पड़े हुओं, आवश्यकता से प्रताड़ितों और मन के जहर से जहरीले होने से घबड़ाए हुए लोगों को दौड़कर सहायक होने की कला है।"

चतुर्वेदीजी की रचनाएँ इसी आकर्षण और ओजस्विता से भरपूर है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के दौरान इनकी कविताओं ने लोक मानस को गहराई से प्रभावित किया।

●

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय सेनानी, पत्रकार तथा साहित्यकार पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म ग्वालियर के भयाना नामक गाँव में हुआ था। दस वर्ष की छोटी अवस्था में ही उनमें साहित्य और पत्रकारिता की ओर रुचि पैदा हो गयी थी। अत: वे कानपुर चले आये। गणेशशंकर विद्यार्थी के संरक्षण में उन्होंने अध्ययन के साथ ही राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया। हाईस्कूल तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद सन् 1920 में गाँधीजी के आह्वान पर उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी और पूरी तरह राजनीति में शामिल हो गये। सन् '21 से '46 तक का इनका अधिकांश जीवन जेल में बीता। देश की आजादी के बाद वे लोकसभा और राज्यसभा के सदस्य भी रहे। साहित्यिक अभिरुचि के साथ देशसेवा का भाव नवीनजी में बचपन से ही था। 'प्रभा' और 'प्रताप' के सम्पादक के रूप में उन्होंने राष्ट्रीय जागरण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। यों तो उन्होंने कविता लेखन का आरम्भ सन् 1917 में कर दिया था, फिर भी उनका पहला कविता संग्रह

'कुमकुम' सन् 1936 में प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् उनके कई काव्यग्रन्थ प्रकाश में आये। उनके उल्लेखनीय काव्यग्रन्थ हैं—अपलक, रश्मिरेखा, विनोबा स्तवन, उर्मिला और 'हमविषपयी जनम के' उनकी अधिकांश कविताएँ जेलों में ही लिखी गयी। नवीनजी के काव्य में प्रणय और राष्ट्रप्रेम की अनुगूँज स्पष्ट सुनाई पड़ती है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के अन्य कवियों की तरह ही नवीनजी ने भी देश के अतीत गौरव का गान किया है, समकालीन भारत की विपन्नता पर आँसू बहाया है और देश के उज्ज्वल भविष्य के लिए आशावादी संदेश दिया। राष्ट्रीय आन्दोलन के तीव्र दौर में नवयुवक उनकी कविताओं का पाठ बड़े गर्व के साथ करते थे। ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाए।
एक हिलोर उधर से आए, एक हिलोर इधर से आए॥

उर्मिला जैसे काव्य में प्राचीन भारत के गौरव का गान करते हुए नवीनजी ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष का आह्वान किया। उनकी मृत्यु के चार साल बाद उनकी स्मृति में प्रकाशित 'हम विषपायी जनम के' नामक संकलन में यद्यपि छह प्रकार की कविताएँ संकलित हैं। किन्तु उसका 'प्रलयंकर' शीर्षक संग्रह राष्ट्रभक्ति की कविताओं का सजीव रूप है। राष्ट्रीय कविताओं के इस संकलन में कवि का आक्रोश हुंकार, ओज तथा विप्लव का आह्वान मुखरित है। राष्ट्र की युग-चेतना की सबसे सशक्त एवं प्रखर वाणी इसी संग्रह की रचनाओं में मिलती है।

●

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म इलाहाबाद जिले के निहालपुर गाँव में हुआ था। उनकी शिक्षा भी प्रयाग में ही हुई। लेकिन सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन का उनके ऊपर गहरा प्रभाव पड़ा। अतः उन्होंने शिक्षा ही छोड़ दी और राजनीति में सक्रिय भाग लेने लगी। स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लेने के कारण उन्हें कई बार जेल यात्रा करनी पड़ी।

बचपन से ही सुभद्राकुमारी चौहान में काव्य के प्रति अभिरुचि थी। विवाह के उपरान्त वे अपने पति लक्ष्मण सिंह चौहान के साथ खण्डवा आ गयीं, लेकिन इनके दोनों कार्य—काव्य रचना और असहयोग आन्दोलन में भाग लेना चलते रहे। उनके दो काव्य संग्रह 'त्रिधारा' और 'मुकुल' प्रकाशित हैं। साथ ही उनके तीन कहानी-संग्रह भी प्रकाशित हैं। सुभद्राकुमारी की कविताओं के मूलतः दो ही विषय रहे हैं। एक राष्ट्रप्रेम और दूसरा पारिवारिक जीवन। लेकिन अधिकांश

कविताएँ राष्ट्रप्रेम से ही सम्बद्ध हैं। उनकी कविताओं में उनके जीवन के अनुभव लिपिबद्ध हैं। उनके बारे में डॉ० रामकुमार वर्मा के विचार उल्लेखनीय हैं— ''राष्ट्रीय कविताओं की उत्कृष्टता की दृष्टि से मैं इनकी कविताओं को 'एक भारतीय आत्मा' की कविताओं से किसी प्रकार हीन नहीं समझता। उन्होंने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में वीर-भाव के साथ ही साथ भावुकता भी इस प्रकार भर दी है कि उन कविताओं का मूल्य वस्तुत: देश के मूल्य के बराबर हो जाता है।''

राष्ट्रप्रेम और भारतीय नारी की गौरवगाथा से पूर्ण उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'झाँसी की रानी' उन्हें अमरत्व देने के लिए पर्याप्त है।

●

रामधारी सिंह 'दिनकर'

रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म बिहार के मुंगेर जनपद के सिमरिया नामक गाँव में हुआ था। सन् 1932 में बी०ए० आनर्स करने के बाद ये हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक हो गये। फिर बिहार सरकार के अधीन सबरजिस्ट्रार हुए। उसके बाद मुजफ्फरपुर में हिन्दी विभागाध्यक्ष, भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति और भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार जैसे पदों को उन्होंने सुशोभित किया। वे राज्यसभा के भी सदस्य रहे। भारत सरकार से 'पद्मभूषण' और 'भारतीय ज्ञानपीठ' का पुरस्कार भी उन्हें प्राप्त हुआ। किन्तु दिनकरजी को प्रतिष्ठा एक कवि और विचारक के रूप में ही प्राप्त हुई। गद्य और पद्य मिलाकर उनकी लगभग साठ से भी अधिक कृतियाँ प्रकाशित हैं। सन् 1935 में प्रकाशित 'रेणुका' उनका प्रथम काव्य-संग्रह है। इसके अतिरिक्त हुंकार, सामधेनी, कलिंग-विजय, मेरे स्वदेश, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, उर्वशी, परशुराम की प्रतीक्षा, दिल्ली, नीलकुसुम आदि इनकी उल्लेखनीय काव्यकृतियाँ हैं। 'उर्वशी' पर उन्हें सन् 1972 में 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' प्राप्त हुआ था।

दिनकरजी राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के सबसे सशक्त कवि हैं। उनमें संवेदना एवं विचार तत्त्व का अद्‌भुत समन्वय है। उनके बारे में ज्ञानपीठ पुरस्कार के अवसर पर समर्पित प्रशस्ति की ये पंक्तियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं— ''श्री दिनकर ने छायावाद की अस्पष्ट और वायवीय विषयवस्तु तथा रूप विधानों वाली काव्य परम्परा से विलग होकर आधुनिक हिन्दी कविता को एक ऐसी ओजमयी ऋजु भाषाशैली दी जो पुनरुत्थानशील राष्ट्रीयता की अदम्य प्रेरणाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ हुई।''

दिनकरजी की कविताओं का कथ्य जो भी हो उसका ओजभरा स्वर निराला की ओजस्विता की याद दिलाता है। दिनकरजी ने अपने समय की समस्याओं पर हमेशा नजर रखी और यथासम्भव उसके समाधान में गहराई से चिन्तन किया है। 'हुंकार' में उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का ओजस्वी रूप देखा जा सकता है। 'कुरुक्षेत्र' में युद्ध और शान्ति की मुँह बाये खड़ी समस्या पर गहराई से विचार किया गया है। 'रश्मिरथी' के माध्यम से कर्ण के चरित्र को आधुनिक सन्दर्भ में प्रस्तुत किया गया और 'परशुराम की प्रतीक्षा' में सन् 1962 के भारत-चीन युद्ध को संदर्भित करती है। 'दिनकर'जी लगभग उन्नीस वर्षों तक दिल्ली में रहे, जहाँ उन्होंने नेताओं के वास्तविक जीवन उनके दाँव-पेंच कथनी-करनी में अन्तर और गाँवों के उत्थान के लिए उनके घड़ियाली आँसुओं को भी बड़े निकट से देखा परखा। उनकी यह पीड़ा भी उनकी कई कविताओं में अभिव्यक्त हुई। कहना पर्याप्त होगा कि दिनकरजी ने राष्ट्रीयता को अपने चिन्तन मनन द्वारा मानवतावादी स्वस्थ स्वरूप देने का सफल प्रयास किया है।

●

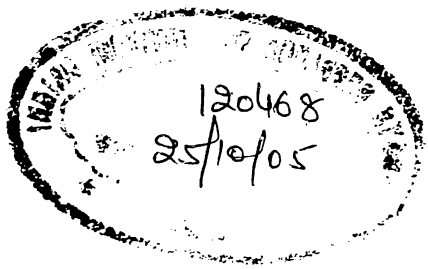

प्रमुख साहित्य ग्रन्थ

आधुनिक हिन्दी आलोचना : संदर्भ एवं दृष्टि	डॉ. रामचन्द्र तिवारी
काव्यरस : चिन्तन और आस्वाद	डॉ. भगीरथ मिश्र
नया काव्यशास्त्र	डॉ. भगीरथ मिश्र
काव्यशास्त्र	डॉ. भगीरथ मिश्र
पाश्चात्य काव्यशास्त्र : इतिहास, सिद्धान्त और वाद	डॉ. भगीरथ मिश्र
भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र	डॉ. अर्चना श्रीवास्तव
कबीर और भारतीय संत साहित्य	डॉ. रामचन्द्र तिवारी
तुलसीकृत विनयपत्रिका का काव्यशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. रामअवतार पाण्डेय
हिन्दी संत काव्य : समाजशास्त्रीय अध्ययन	प्रो. वासुदेव सिंह
वाग्द्वार (सात हिन्दी कवियों का मौलिक अध्ययन)	प्रो. कल्याणमल लोढ़ा
साहित्य, सौन्दर्य और संस्कृति	सं. डॉ. रतनकुमार पाण्डेय
हिन्दी का गद्य-साहित्य	डॉ. रामचन्द्र तिवारी
क्रांतिकारी कवि निराला	डॉ. बच्चन सिंह
फणीश्वरनाथ रेणु और उनका कथा साहित्य	डॉ. रागिनी वर्मा
सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और उनका काव्य संसार	डॉ. मञ्जु त्रिपाठी
भवानीप्रसाद मिश्र और उनका काव्य संसार	डॉ. अनुपम मिश्र
कथा राम कै गूढ़	डॉ. रामचन्द्र तिवारी
प्रगतिशील काव्यधारा और त्रिलोचन	डॉ. हरिनिवास पाण्डेय
प्रगतिशील आलोचना की परम्परा और डॉ. रामविलास शर्मा	डॉ. रामचन्द्र तिवारी
आधुनिक हिन्दी कविता का वैचारिक पक्ष	डॉ. [illegible]
हिन्दी व्यंग्य साहित्य और हरिशंकर	
मिथकीय कल्पना और आधुनिक क	
भोजपुरी लोक साहित्य	
लोकगीतों के संदर्भ और आयाम	

IIAS, Shimla
Library
H 811.009 M 687 R
00120468

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

ISBN : 81-7124-349-5

मूल्य : सोलह रुपये